000000-
प्रथम- अध्याय
-000000

प्राग् औपनिषद् सृष्टि-प्रक्रिया

उपनिषदों में वर्णित सृष्टि-प्रक्रिया की पृष्ठभूमि में ऋक्, यजुः आदि संहिता भाग तथा शतपथ, ऐतरेय, गोपथ एवं कौषीतकि आदि ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिपादित सृष्टि-प्रक्रिया की विशिष्ट उपयोगिता है । उक्त संहिता-भाग एवं ब्राह्मणग्रन्थों में भी ऋग्वेद की अपनी एक गौरवास्पद भूमिका है । भारतीय दार्शनिक परम्परा का सम्भवतः कोई ऐसा विचार नहीं है जिसकी ऋग्वेद में अभिव्यक्ति न हुई हो । डॉ० राधाकृष्णन् के अनुसार- "किसी भी भारतीय विचारधारा की सही-सही जानकारी के लिए ऋग्वेद के सूक्तों का अध्ययन अनिवार्य है ।"[1] ऋग्वेद के महत्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ० विश्वेश्वरनाथ रेउ ने अपनी पुस्तक में मैक्समूलर का यह मत उद्धृत किया है -" जब तक पृथ्वी पर पर्वत और नदियाँ रहेंगी तब तक लोकों में ऋग्वेद की महिमा का प्रसार होता रहेगा ।[2]

ऋग्वेद में सृष्टि-प्रक्रिया के विषय में नानाविध परि-कल्पनाएँ दृष्टिगोचर होती हैं । डॉ० गणेशदत्त शर्मा ने ऋग्वेदीय समग्र विचार-

:-

1. डॉ० राधाकृष्णन्, भारतीयदर्शन, खण्ड 1, पृ० 66

~~2. डॉ० गणेशदत्त शर्मा "ऋग्वेद में दार्शनिक तत्व", पृ० 15~~

2. डॉ० गणेशदत्त शर्मा द्वारा लिखित 'ऋग्वेद में दार्शनिक तत्व', पृष्ठ 15 से उद्धृत टिप्पणी

धाराओं का दो भागों में विभाजन किया है - पुराकथा शास्त्रीय तथा दार्शनिक ।[1] उक्त दोनों संविभागों की व्याख्या करते हुए मैक्डानल लिखते हैं - "एक विचारधारा (पुराकथाशास्त्रीय) के अनुसार यह संसार यान्त्रिक-प्रक्रिया का परिणाम है जिसके पीछे बढ़ई अथवा लुहार की भाँति किसी कुशल कारीगर का हाथ है । दूसरी विचारधारा (दार्शनिक) इस विश्व को प्राकृतिक उत्पत्ति का परिणाम मानती है ।"[2] सृष्टि से सम्बन्धित उपादान विषयक प्रश्न भी ऋग्वेद में किए गए हैं ।[3] परन्तु इतना निश्चित है कि ऋग्वैदिक-सृष्टि-प्रक्रिया का एक निष्कर्ष स्थापित करना सर्वथा असम्भव है । डॉ० सूर्यकान्त के अनुसार -"विश्व के मूल के विषय में कोई भी सरल एवं सुसंगत विचार नहीं व्यक्त किया जा सकता । एक मत के अनुसार संसार की उत्पत्ति और स्थिति देवताओं ने की है । इन्द्र छः लोकों को मापते हैं, उर्वी, पृथिवी और ऋष्व अन्तरिक्ष की रचना करते हैं, किन्तु इसी कार्य को त्वष्ट्र, वरुण और विष्णु जैसे अन्य देवता भी करते हैं । एक स्थान पर सूर्य को रजस् का विमान बताया गया है : पृथ्वी को विस्तृत करने का कार्य इन्द्र, अग्नि, मरुत् और इतर देवता करते हैं । एक अन्य स्थल में विश्व-सदन के उपादान-भूत वन का उल्लेख किया गया है । द्यौः और पृथ्वी को अपने अपने स्तम्भों से टिका बताया गया है, किन्तु वायु को स्तम्भ की अपेक्षा नहीं है, इसका स्थायित्व आश्चर्यजनक है, इसे स्वर्ग के प्रवेशद्वार में स्थित किया गया है । सविता बन्धनों के द्वारा पृथ्वी को दृढ़ बनाते हैं, विष्णु खूँटियों से और

---

1. डॉ० गणेशदत्त शर्मा, 'ऋग्वेद में दार्शनिक तत्त्व', पृ० 15
2. मैक्डानल, "वैदिक-माइथॉलाजी, पृ० 11
3. ऋग्वेद, 10/81/4

बृहस्पति इसके छोरों को तानते हैं ।"[1]

डॉ० राधाकृष्णन् ने ऋग्वेद में वर्णित सृष्टि के उपादानकारणों का मुख्यतः दो प्रकार से विभाजन किया है - बहुदेववाद एवं एकेश्वरवाद । वे लिखते हैं -" इनमें से पहला पक्ष हमें उच्चतर अद्वैतपरक विचार की ओर ले जाता है । वैदिक सूक्तों में दोनों ही प्रकार के मत पाए जाते हैं ।[2]

वैदिक सृष्टि-प्रक्रिया में चिन्तन की एक विस्तृत परम्परा है जिसमें सृष्टि की प्रारम्भिक अवस्था से लेकर विकास पर्यन्त क्रमिक सोपानों की विशद विवेचना की गई है । ऋग्वेद का"नासदीय सूक्त" तो सृष्टि से पूर्व की अवस्था का भी विश्लेषण कर देता है । श्री के०दामोदरन् के अनुसार -" ऋग्वेद का नासदीय सूक्त आदिकालीन आर्यों की गवेषणात्मक प्रवृत्ति का एक महान स्रोत माना जा सकता है ।"[3] इस सूक्त की प्रारम्भिक तीन ऋचाओं में सृष्टि से पूर्व की अवस्था का बड़ा सजीव एवं अद्वितीय चित्रण हुआ है । मैक्समूलर ने उक्त सूक्त का अनुवाद इस प्रकार किया है -

> "उस समय न तो सत् था और न ही असत् ।
> आकाश भी विद्यमान नहीं था और न ही उससे ऊपर का अन्तरिक्ष था । किसने इसे आवृत कर रखा था ? वह कहाँ था और किसके आश्रय में रहता था ? क्या वह आदिम कालीन गहन और गम्भीर जल था ﴾ जिसमें यह सब स्थित था ﴿?
> मृत्यु भी नहीं थी, इसलिए अमरता की भावना भी नहीं थी । रात और दिन में भेद करने वाला प्रकाश भी नहीं था । वह एक ही उस समय बिना श्वास-प्रश्वास की क्रिया के जीवित रहने वाला ब्रह्म विद्यमान था । उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था । उस समय अन्धकार था, प्रारम्भ में सब एक अर्णव-समुद्र के

:-

1. डॉ० सूर्यकान्त, "वैदिक धर्म एवं दर्शन", प्रथम भाग, पृ० 99-100
2. डॉ० राधाकृष्णन, भारतीय-दर्शन",पृ० 91
3. श्री के०दामोदरन 'भारतीय-चिन्तन-परम्परा', पृ० 16

रूप में था, प्रकाश रहित, एक ऐसा अंकुर जो त्विष (भूसी) से ढका हुआ था, उस एक की उत्पत्ति उष्मा (तप) की शक्ति से हुई । प्रारम्भ में प्रेम ने उसे आविर्भूत किया जो मानस से उत्पन्न हुआ बीज था, कवियों ने अपने हृदय में खोज करने के पश्चात् बुद्धि द्वारा असत् के साथ सत् के बन्धन का पता लगाया । उनकी किरण जो सर्वत्र फैली हुई थी, अथवा वह ऊपर थी अथवा नीचे थी ? बीज को धारण करने वाले थे, शक्तियाँ भी थीं, आत्मशक्ति नीचे और इच्छाशक्ति ऊपर थी । तब फिर ज्ञाता कौन, है, किसने इसकी यहाँ घोषणा की, किससे यह सृष्टि उत्पन्न हुई ? देव लोग इस सृष्टि की उत्पत्ति के पीछे आए । तब फिर कौन जानता है कि सृष्टि कहाँ से हुई ? जिससे इस सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ, उसने इसे बनाया या नहीं बनाया, ऊँचे से ऊँचे अन्तरिक्ष लोक में ऊँचे से ऊँचा देखने वाला, वही यथार्थरूप से जानता है अथवा क्या वह भी नहीं जानता"।[1]

उक्त अनुदित मन्त्रों में प्रयुक्त सत् - असत्, अमृत - मृत्यु, अन्धकार एवं तपस् आदि शब्दों का विश्लेषण करने से सृष्टि सम्बन्धी कतिपय दार्शनिक तत्त्व उपलब्ध होते हैं । सायण के अनुसार - "नासदीय-सूक्त" में सत् एवं असत् के निषेध द्वारा प्रलयकाल में मूल कारण की अनिर्वचनीयता प्रतिपादित की गई है ।[2] वेंकट माधव ने "असत्" का अर्थ कारण और "सत्" का अर्थ कार्य किया है और यह तथ्य प्रतिपादित किया है कि उस समय दृश्यमान कार्यवर्ग तथा कारणवर्ग नहीं था ।[3] इसके अतिरिक्त वेंकट माधव ने "असत्" को प्राण तथा "सत्" को अन्तरिक्ष का वाचक भी माना है ।[4] शत-

:-:

1. मैक्समूलर, "सिक्स सिस्टम्स ऑफ इण्डियन फिलासफी, पृ0 65
2. ऋग्वेद 10/129/1 पर सायण-भाष्य ।
3. "असत्-शब्दः कारणवचनः, सत्-शब्दः कार्यवचनः । अयं परिदृश्यमानः कार्यवर्गः कारणवर्गश्च न अभूत्" ।

   (ऋग्वेद 10/129/1 पर वेंकटमाधव भाष्य)
4. वही -

पथ ब्राह्मणकार ने उक्त सूक्त की व्याख्या करते हुए कहा है कि "आरम्भ में न तो यह "असत्" था और नहीं "सत्" था । तब यह केवल वह मन ही था क्योंकि मन न तो सत् था और न असत्" ।[1] "शतपथ-ब्राह्मण" की इस व्याख्या में भी आदि-तत्त्व की अनिर्वचनीयता का आभास मिलता है जो सृष्टि के प्रारम्भ में केवल मनोरूप था । "नासदीय सूक्त" में भी मन का प्रथम बीज "काम" को बताया गया है ।[2] डॉ० राधाकृष्णन् ने "नासदीय-सूक्त" पर समालोचना करते हुए अपना मन्तव्य इस प्रकार प्रस्तुत किया है - {नासदीय-सूक्त की} पहली पंक्ति हमारे सिद्धान्तों की अपूर्णता को प्रकाशित करती है । परमसत्ता को, जो समस्त विश्व की पृष्ठ भूमि में है, हम सत् अथवा असत् किसी भी रूप में ठीक-ठीक नहीं जान सकते"[3]। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने "वेदरश्मि" नामक ग्रन्थ में ब्रह्म को सत् तत्त्व तथा प्रधान या प्रकृति को असत् तत्त्व माना है ।[4] पं० हरिशंकर जोशी के अनुसार - "असत् अभौतिक तत्त्व है तथा सत् भौतिक तत्त्व है"[5]। आचार्य उदयवीर शास्त्री ने "सत्" का अर्थ "व्यक्त" एवं असत् का अर्थ "अव्यक्त" किया है ।[6]

प्रामाणिक विद्वानों के पूर्वोक्त विचारों में पर्याप्त भिन्नता होने पर भी यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि "सत" एवं "असत्" के विवेचन से जगत् की कारणता का एक अस्पष्ट सा संकेत अवश्य मिलता है । सम्भवतः न्यायदर्शन के असत्कार्यवाद[7] एवं सांख्य के

:-

1. शत० ब्रा० 10/5/3/1-2
2. "कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्" {ऋ० वे० 10/129/4
3. डॉ० राधाकृष्णन्, "भारतीय-दर्शन", खण्ड 1, पृ० 92
4. डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, "वेदरश्मि", नासदीयसूक्त, पृ० 67
5. पं० हरिशंकर जोशी, "वैदिक विश्वदर्शन", पृ० 222
6. उदयवीर शास्त्री, "सांख्य-सिद्धान्त", पृ० 352
7. "प्रागुत्पत्तेरुत्पत्तिधर्मकमसदित्यद्धा" । न्यायसूत्र, वात्स्यायनभाष्य, 4/2/48

सत्कार्यवाद[1] का मूल भी "नासदीय" सूक्त ही है ।

"नासदीय-सूक्त" के अतिरिक्त हिरण्यगर्भसूक्त (10/121), एवं पुरुषसूक्त भी सृष्टि के पूर्व की अवस्था को इंगित करते हैं । ऋग्वेदीय "हिरण्यगर्भसूक्त" में हिरण्यगर्भ को सृष्टि के प्रारम्भ में विद्यमान स्वीकार किया गया है । वहाँ इस तथ्य की भी स्थापना हुई है कि वही (हिरण्यगर्भ) उत्पन्न होने वाले प्राणिमात्र का पति (रक्षक) था ; वह पृथ्वी, आकाश, अन्तरिक्षलोक एवं समस्त विश्व को धारण करता है ; अपने महत्व के कारण वह जागृत एवं स्वप्नशील समग्र भूतों का अकेले ही राजा (शासक) है । उक्त सूक्त की अन्तिम ऋचा[2] में हिरण्यगर्भ को साक्षात् प्रजापति नाम से सम्बोधित किया गया है, जो उसके सृष्टिकर्ता होने का स्पष्ट संकेत देता है ।

"पुरुष-सूक्त" में यज्ञ के माध्यम से सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में जो कल्पना की गई है वह अपने आप में अद्वितीय है । देवताओं ने पुरुष की बलि यज्ञ में दी और उससे जगत् के नाना प्राणियों की उत्पत्ति हुई । इसी सूक्त में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र की उत्पत्ति पुरुष के क्रमशः मुख, बाहु, उरु (जंघा) एवं पैरों से बतलाई गई है ।[3] सृष्टि-चक्र के यथावत् संचारण हेतु साधन जुटाने में यज्ञ की एक विशिष्ट भूमिका है - यह एक वैदिक तत्त्व है जिसका प्रतिपादन पुरुषसूक्त में है और परिवर्धन "श्रीमद्भगवद्गीता" में उपलब्ध होता है - "प्रजापति ने भूतों की सृष्टि तथा यज्ञ की उत्पत्ति एक साथ की और देवों एवं मानवों के परस्पर साहाय्य भाव का आदर्श उसी आदिकाल में स्थापित किया । जीवों की सृष्टि अन्न से होती है ; अन्न पर्जन्य (वर्षा) से उत्पन्न होता है और पर्जन्य

:-

1. "असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवा भावात् ।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्" ।।
(सां० तत्त्व कौमुदी, डॉ० आद्याप्रसाद द्वारा अनूदित)

2. ऋग्वेद, 10/121/8

3. ऋग्वेद, पु० सू० 10/90

यज्ञ से उत्पन्न होता है, यज्ञ कर्म से उत्पन्न होता है, कर्म ब्रह्म से उत्पन्न होता है और ब्रह्म उत्पन्न होता है अक्षर परमात्मा से" ।[1]

ऋग्वेद में हिरण्यगर्भ एवं पुरुष के अतिरिक्त सविता, त्वष्टा, धाता, विश्वकर्मा एवं प्रजापति आदि देवों की भी सृष्टि के निर्माण कार्य में एक विशिष्ट भूमिका मानी गई है । मेक्डानल ने इन्हें भावात्मक देवताओं की श्रेणी में रखा है ।[2]

ऋग्वेद में सविता की सृजनात्मक शक्ति का प्रतिपादन करते हुए एक मन्त्र में कहा गया है - "हे सविता ! तुम अकेले ही इस जगत् को उत्पन्न करने में पूर्णतया समर्थ हो ।[3] एक अन्य ऋचा में कहा गया है कि "सविता जगत् में निर्माण हेतु भुजा फैलाते हैं"।[4] सम्भवतः यास्क ने उक्त ऋचाओं के आधार पर ही सविता की निरुक्ति "सविता सर्वस्य प्रसविता की है ।[5] जगन्निर्माण-कार्य में सविता के उपरान्त त्वष्टा का वर्णन मिलता है । ऋग्वेद में त्वष्टा को सबका उत्पादक एवं पालन-पोषण करने वाला बताया गया है ।[6] एक मन्त्रानुसार त्वष्टा ने ही सारे प्राणियों को रूप सम्पन्न किया है ।[7]

सृष्टि-निर्माण में उक्त देवों के साथ-साथ धाता का भी उल्लेख प्राप्त होता है । उसे सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं स्वर्ग का स्रष्टा कहा गया है ।[8] विश्वकर्मा को सम्बोधित सूक्त में धाता के

:-:

1. श्री मद्भगवद्गीता, तृतीयाध्याय, श्लोक सं0 10-16
2. मैक्डानल, "वैदिक-माइथोलोजी" , पृ0 115
3. "उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इत्" । ऋ0 5/81/5
4. "प्रबाहू अस्राक् सविता सवीमनि" । ऋ0 4/53/3
5. यास्क, "निरुक्त", 10/31
6. "देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः प्रपोष प्रजाः पुरुधा जजान" । ऋ0 3/55/19
7. ऋ0 10/110/9
8. "सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
   दिवं च पृथ्वीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।। ऋ0 10/110/9

साथ-साथ विधाता का भी वर्णन हुआ है ।[1] यास्क के अनुसार धाता सबका विधायक है - "धाता सर्वस्य विधाता" ।[2] सृष्टि - विधायक देवों में विश्वकर्मा का भी महत्वपूर्ण स्थान है । "यह अकेला ही द्यावा पृथिवी का निर्माता है" ।[3] ऋग्वेद के एक स्थल में "विश्वकर्मा को पिता जनिता एवं विधाता" भी अभिहित किया गया है ।[4] निरुक्तकार के अनुसार विश्वकर्मा सबका कर्ता है - "विश्वकर्मा सर्वस्य कर्त्ता" ।[5]

उक्त देवों के अतिरिक्त अग्नि, सूर्य, इन्द्र, वरुण एवं विष्णु आदि देवों को भी सृष्टि - प्रक्रिया के विविध आयामों का कर्ता माना गया है । शनैः शनैः इस विचार का उदय हुआ कि यह विश्व एक-मात्र सर्वोच्च सत्ता का ही विकसित रूप है ।[6]

सृष्टि का आलंकारिक वर्णन :-

ऋग्वेद के अनेक स्थलों में सृष्टि - रचना का अलंकार-मयी भाषा में वर्णन किया गया है । जगत् - निर्माण - कार्य को भवन निर्माण का रूपक भी दिया गया है । ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि विष्णु ने मानवों के निवास हेतु लोकों को नापा और उनका विस्तार किया ।[7] एक अन्य स्थल में कहा गया है कि "इन्द्र ने पृथिवी को छः बार ~~नर~~ नापा तथा पृथ्वी के विस्तृत तल एवं स्वर्ग के उच्च शिखर का निर्माण

:-

1. "धाता विधाता परमोत संदृक्" ऋ0 10/82/2
2. यास्क, "निरुक्त" , 11/10
3. "द्यावा-भूमी जनयन् देव एकः" । ऋ0 10/81/3
4. "यो नः पिता जनिता यो विधाता" । ऋ0 10/82/3
5. यास्क, निरुक्त 10/25
6. पं0 विश्वेश्वर नाथ रेउ, " ऋग्वेद पर एक ऐतिहासिक दृष्टि, पृ0 93
7. "यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद् विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
   तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा तना च " ।
   ऋ0 6/49/13

किया" ।[1] सृष्टि के आधार तत्त्वों का भी ऋग्वेद में वर्णन हुआ है । एक स्थल में कहा गया है कि "सविता ने यन्त्रों के माध्यम से पृथ्वी को दृढ़ किया" ।[2] अन्य स्थलों में विष्णु[3] द्वारा द्यावा पृथिवी को स्थिर करने तथा बृहस्पति[4] द्वारा पृथ्वी के छोरों को मापने का भी प्रतिपादन हुआ है ।

प्रश्नात्मक शैली में वर्णन :-

ऋग्वेद के विश्वकर्मा को सम्बोधित एक सूक्त में सृष्टि के मूल उपादान कारण के विषय में प्रश्नात्मक ढंग से यह जिज्ञासा व्यक्त की गई है - "वह कौन - सा वन था और वह कौन - सा वृक्ष था जिसे काट - छील का द्यावापृथिवी का निर्माण किया गया" ।[5] उपादान विषयक उक्त प्रश्न का उत्तर ऋग्वेद में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता । आगे चलकर "तैत्तिरीय - ब्राह्मण में इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है - "ब्रह्म ही वन था, ब्रह्म ही वह वृक्ष था जिसको काट छीलकर द्यावा-पृथिवी का निर्माण किया गया" ।[6] सायण ने भी उक्त ऋचा के भाष्य में "ब्रह्म स वृक्ष आसीत् इत्यादिकमुत्तरम्" लिखकर इसी उत्तर को पुष्ट किया है ।[7]

:-

1. ऋग्वेद 6/47/3-4
2. "सविता यन्त्रैः पृथिवीमरभ्णात्" (ऋ0 10/14/9/1)
3. "व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते" (ऋग्वेद 7/99/3)
4. "यस्तस्तम्भ सहसा विज्मो अन्तान् (ऋ0 4/50/1)
5. "किं स्विद्वनं क उ वृक्ष आस ।
   यतो द्यावापृथिवी निष्ट तक्षुः" ।। (ऋ0 10/81/4)
6. "ब्रह्म तद्वनं ब्रह्म स उ वृक्ष आस, यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः" ।
   (तै0 ब्रा0 2/5/9/6)

~~7. "ब्रह्मणां वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि" ।~~
~~स्वामी दयानन्द, "परिशोधित अनुभ्रमोच्छेदन" ।~~

7. तै० ब्रा० 2/5/9/6 पर सायणभाष्य

एवं वैदिक - साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ ऋग्वेद में सृष्टि के कारण रूप में एक-देववाद एवं बहुदेववाद दोनों ही दृष्टियाँ उपलब्ध होती हैं । पूर्व-औपनिषदिक सृष्टि-प्रक्रिया के प्रसंग में अब क्रमप्राप्त ब्राह्मण ग्रन्थों की समीक्षा प्रस्तुत की जाती है ।

ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमुख प्रयोजन वेदों का व्याख्यान है, स्वामी दयानन्द ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया है[1] । वेदों के कर्मकाण्ड की व्याख्या के साथ-साथ ब्राह्मणों में सृष्टि, आत्मा एवं लोक-परलोक सम्बन्धी दार्शनिक पहलुओं पर भी विचार किया गया है । ब्राह्मण - ग्रन्थों में सृष्टि - प्रक्रिया से सम्बद्ध अधोलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं -

§क§ प्रजापति §यज्ञ§ से सृष्टि :-

ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रजापति को यज्ञ कहा गया है - "प्रजापतिर्वै यज्ञः ।[1] लगभग सभी ब्राह्मण सृष्टि - व्याप्त यज्ञ से ही अखिल विश्व की सृष्टि मानते हैं । मैत्रायणी संहिता में भी इसी तथ्य का अनुमोदन करते हुए कहा गया है कि प्रजापति §यज्ञ§ ने अग्नि में दी गई 13 आहुतियों द्वारा क्रमशः सात ग्राम्य पशुओं और छह ऋतुओं को उत्पन्न किया था ।[2] काठक - संहिता[3] एवं तैत्तिरीयसंहिता [4] में भी इसी तथ्य की पुनरुक्ति हुई है ।

"तैत्तिरीय ब्राह्मण" में कहा गया है कि अङ्गिरसों ने होम द्वारा औषधियों की सृष्टि की [5] तथा प्रजापति ने अग्नि, वायु एवं आदित्य को उत्पन्न किया । इन तीन देवों ने क्रमशः प्राण, शरीर और आँखों के लिए आहुति देकर एक गाय की सृष्टि की ।[6]

---

1. ब्राह्मणानि वेदानामिमानि व्याख्यानानि ब्राह्मणानि; स्वामी दयानन्द; परिशोधित अनुभ्रमोच्छेदन
2. ए० ब्रा० 4/26
3. मै० सं० 1/8/1-2
4. का० सं० 6/2
5. तै० सं० 2/1/2/4
6. तै० ब्रा० 2/1/1
7. तै० ब्रा० 2/1/6

"शतपथ ब्राह्मण" में बतलाया गया है कि प्रजा-निर्माण की इच्छा से प्रजापति ने पहले ऐसे पक्षियों एवं सर्पणशील प्राणियों की सृष्टि की जो उत्पन्न होते ही मर जाते थे । उनकी मृत्यु का कारण अन्नाभाव जानकर प्रजापति ने पहले दूधरूपी अन्न बनाया और पुनः ऐसे स्तनपायी प्राणियों को उत्पन्न किया जो उस दूध के आधार पर चिरंजीवी बने ।[1]

"चातुर्मास्ययाग" के प्रसंग में मैत्रायणी संहिता [2] एवं "काठक संहिता [3] में कहा गया है कि चातुर्मास्यों से ही प्रजापति ने असुरों का नाश करके प्रजा की सृष्टि की थी । "गोनामिक" याग के प्रसंग में "मैत्रायणी - संहिता" में कहा गया है कि प्रजापति ने क्रमशः असुरों, पितरों, देवों और मनुष्यों की उत्पत्ति की । । प्रजापति की मनस् शक्ति से निर्मित मनुष्यों में जो अधिक बोलता अथवा गमन करता है, उसके मनुष्य स्थिर होते हैं । मनुष्य के लिए उसकी जो योनि बाहर आ पड़ी, वह गौ बन गई ।[4] इसी आख्यान को विस्तारित करते हुए आगे कहा गया है कि पहले मित्रावरुण ने गौ को द्विपदी बनाया परन्तु वह खड़ी न हो सकी अतः उसे चतुष्पदी बनाया गया इसी से वह स्थिर हो सकी ।[5] इसी प्रकरण के अन्तर्गत "मैत्रायणी - संहिता में यह भी उल्लेख है कि प्रजापति ने अपने मानस - संकल्प से अथवा आन्तरिक गति से मन को उत्पन्न किया और पुनः मन ने वाक् , वाक् ने विराट, विराट् ने गौ और गाय ने इडा का निर्माण किया और वे समस्त भोग तथा कामनाएँ इस इडा से ही उत्पन्न होते हैं जिन्हें मनुष्य भोगता है ।[6] तात्त्विक दृष्टि से विचार करने पर

:-

1. श० ब्रा० 2/5/1/1-3
2. मै० सं० 1/10/5
3. का० सं० 35/20
4. मै० सं० 4/2/1
5. मै० सं० 4/2/13
6. मै० सं० 4/2/3

स्पष्ट होता है कि गौ वस्तुतः सृष्टि की समस्त सर्जनात्मक, उत्पादक एवं पोषक तत्त्वों की प्रतीक है । इसी गौ को जानना मानों सृष्टि की इन्हीं समस्त शक्तियों के रहस्यों को जानना है ।

"शतपथ ब्राह्मण" में प्रजापति द्वारा रुद्र की उत्पत्ति विषयक मनोरम कथा भी प्राप्त होती है । प्रजापति ने जब सृष्टि करना आरम्भ किया तब एक कुमार का जन्म हुआ जो जन्म लेते ही अपने नामकरण के लिए रोने लगा । जन्म के समय ही रोदन क्रिया से सम्बद्ध होने के कारण उस कुमार का नाम रुद्र रखा गया ।[1] शतपथ ब्राह्मण की यह कथा लगभग सभी महापुराणों में भी उपलब्ध होती है ।

"अग्निचितियाग" के प्रसंग में शतपथ ब्राह्मण में "अग्निचिति (चयन)" का जो प्रयोजन एवं व्याख्यान विशद रूप से वर्णित किया गया है उसका सृष्टि-प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । शतपथकार कहता है कि प्रारम्भ में केवल प्राणरूप सात ऋषि थे । इन सात ऋषियों ने सातपुरुषों (भागों) - दो नाभि से ऊपर, दो नीचे, दो पक्ष और एक प्रतिष्ठा को संयुक्त करके एक पूर्ण पुरुष का निर्माण किया । यही पुरुष प्रजापति है और यही वह अग्नि है जिसका चयन किया जाता है ।[2] इसी अग्नि रूप प्रजापति [3] ने इस जगत् में सर्वप्रथम जिस वस्तु का सृजन किया, वह भी अग्नि ही है । उत्पन्न होने वाले पदार्थों में अग्रणी होने के कारण ही इसका नाम "अग्नि" है ।[4] तदनन्तर प्रजापति ने अनेक पदार्थों, लोकों एवं प्रजाओं का निर्माण किया ।[5] पुरुष प्रजापति के शरीर के लोम, त्वक्, माँस, अस्थि और मज्जा ; संवत्सर - प्रजापति के शरीर की पाँचों ऋतुएँ और वायु - प्रजापति के शरीर की पाँचों दिशाएँ विघटित हो गई थीं ।

:-:

1. श० ब्रा० 6/1/3/8
2. श० ब्रा० 6/1/1- 1-6
3. श० ब्रा० 2/3/3/18, 3/9/1/6, 6/5/3/7, तै०ब्रा० 1/1/5/5
4. श० ब्रा० 6/1/1/11
5. श० ब्रा० 6/1/1/12-25, 6/1/2/1-11

यही पाँच-पाँच तत्त्व इस अग्निचितियाग की पाँच चितियाँ हैं । अग्नि ने इन बिखरे तत्त्वों को पुनः संगठित करके सम्यक्तया यथास्थान चुना था इसलिए ये चिति कहलाते हैं ।[1] इस प्रकार प्रजापति ने अग्नि को और अग्नि ने प्रजापति को उत्पन्न किया । अतः प्रजापति अग्नि का पिता भी है और पुत्र भी ।[2] अग्निचिति की यह विधि सृष्टिरचना और प्रजोत्पत्ति की जटिल प्रक्रियाओं का प्रतीकात्मक ढंग से विवेचन करती है । मैत्रायणी संहिता शतपथ एवं तै० सं० में इसे और स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि "स्वयमातृण्णा" नामक इष्टकाएँ तीनों लोकों की प्रतीक हैं [3] "रेतःसिक्" इष्टकाएँ प्रजोत्पत्ति हेतु रेतस् के आधान के निमित्त रखी जाती है ।[4] पाँच पशुसिरों का आधान प्राणियों के पाँच वर्गों का द्योतक है ।[5] "प्राणभृता" नामक दस इष्टकाओं द्वारा दस प्राणों अथवा दस इन्द्रियों की स्थापना की जाती है[6], "दिश्या इष्टकाओं" से दिशाओं को स्थिर किया जाता है [7], बारह "ऋतव्या" इष्टकाओं द्वारा दो-दो मासों वाली छः ऋतुओं को सूचित किया गया है ।[8] "विराट" नामक इष्टकाएँ वाणी की प्रतीक हैं अतः इनके आधान से प्राणियों में "वाक्" की स्थापना की गई है ।[9] अतः "अग्निचितियाग" का मुख्य प्रयोजन

:-

1. श० ब्रा० 6/1/2/12-19
2. श० ब्रा० 6/1/2/26-27
3. मै० सं० 3/2/6, तै० सं० 5/2/8, श० ब्रा० 7/4/2/8, 8/3/1/10
4. मै० सं० 3/2/6, का० सं० 20/6, श० ब्रा० 7/4/2/24
5. मै० सं० 3/2/7, श० ब्रा० 6/2/1/1-12, 7/5/2/1
6. मै० सं० 3/2/8, तै० सं० 5/2/10, का० सं० 21/3
7. मै० सं० 3/2/9, तै०सं० 5/3/2, का० सं० 20/11, श०ब्रा० 8/3/1/11
8. मै० सं० 3/3/3, तै०सं० 5/4/2, का०सं० 21/3, श०ब्रा० 7/4/2/29-31
9. मै० सं० 3/2/10, तै० सं० 5/3/5, का० सं० 21/2

सृष्टि-निर्माण की प्रक्रिया से अवगत कराना ही प्रतीत होता है । डॉ० कीथ भी इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए कहते हैं कि "यह यज्ञ वस्तुतः ब्रह्माण्ड रचना के उस पूर्ववर्ती विचार को कर्मकाण्ड में उतारने का पुरोहितों द्वारा किया गया ठोस प्रयास है, जो ऋग्वेद के पुरुष-सूक्त में आदि विराट् पुरुष के शरीर-विच्छेद द्वारा सृष्टि रचना की प्रक्रिया के रूप में वर्णित है । यह अग्नि वेदी ब्रह्माण्ड की प्रतीक है और इस प्रकार यह यज्ञ ब्रह्माण्ड-रचना का प्रतीक है" ।[1]

इन्द्र से सृष्टि -

प्रजापति के अतिरिक्त इन्द्र से भी अनेक प्राणियों की सृष्टि के संकेत प्राप्त होते हैं । "सौत्रामणी-याग" के सन्दर्भ में मैत्रायणी संहिता"[2], काठक-संहिता[3], तैत्तिरीय संहिता[4] एवं शतपथ ब्राह्मण[5] में कहा गया है कि जब इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र त्रिशीर्ष सोमपायी विश्वरूप को मार दिया तो क्रुद्ध त्वष्टा ने इन्द्र को सोम से वंचित कर दिया इन्द्र ने उसके यज्ञ का विनाश करके सारा सोम पी लिया । वह पीत सोम इन्द्र के शरीर से निकलने लगा और यह निःसृत विविध पशुओं और अन्नों में परिवर्तित हो गया ।

पुरुष एवं प्रकृति से सृष्टि -

गोपथ ब्राह्मण[6] एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण[7] में पुरुष का सृष्टिकर्ता के रूप में उल्लेख मिलता है तथा उसे शतवीर्य एवं शतेन्द्रिय कहा गया है । ये दोनों पर्याय ब्रह्मपरक तथा मनुष्य परक दोनों अर्थों

:-

1. वै० व० द०, 2,440-441
2. मै० सं० 2/4/1
3. ~~मै० सं० 1/8/5~~ का० सं० 12/10
4. तै० सं० 1/8/5
5. श० ब्रा० 12/7/1
6. गो० ब्रा० 6/12
7. तै० ब्रा० 3/9/12/3

में प्रयुक्त हुए हैं । समस्त सृष्टि के आरम्भ कर्ता पुरुष का भाव इन पर्यायों से व्यक्त होता है उसका स्वरूप ऋग्वेद {10/129/2} के "आनीदवातं स्वधया तदेकम्" से मिलता है[1]। "कौषीतकी ब्राह्मण"[2] में पुरुष को एकविंश, पांक्त, शतायु, गायत्र, औष्णिह एवं द्विपाद कहा गया है । डॉ० फतेहसिंह ने सृष्टि की पाँच अवस्थाओं को दृष्टि में रखकर पुरुष को "पांक्त" कहा है ।[3] ऐतरेयकार ने साम और ऋक् द्वारा विराट की सृष्टि बतलाई है । इस प्रसंग में ब्राह्मणकार ने 'सा' को ऋक् तथा 'अमः' को साम कहा है ।[4] ऐसा प्रतीत होता है कि सा या ऋक्, लयविहीन होने से प्रकृति की सुप्तावस्था का आभास कराती है तथा अमः या साम उसको गति देने वाला है । दोनों के मिथुन से विराट की उत्पत्ति होती है । डा० फतेहसिंह ने 'सा' और 'अमः' को पुरुष और प्रकृति के रूप में स्वीकार करके इनके द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति का संकेत अपने "वैदिक-दर्शन" ग्रन्थ में किया है ।[5]

ब्राह्मण एवं ऋग्वेदादि में प्रतिपादित सृष्टि सम्बन्धी उक्त दार्शनिक मतों का स्पष्ट प्रभाव उपनिषत्साहित्य में दृष्टिगोचर होता है । परन्तु उपनिषदों ने मात्र वैदिक-साहित्य को ही आधार नहीं बनाया अपितु सृष्टि सम्बन्धी विचारों को उनसे बीज रूप में ग्रहण करके उन्हें एक नई चिन्तन पद्धति के आयाम में भी ढाला ।

"छान्दोग्योपनिषद्"[6] में असत् से ब्रह्माण्ड की ~~उत्पत्ति~~ उत्पत्ति का सिद्धान्त मूलतः ऋग्वेद[7] के दसवें मण्डलान्तर्गत 72 वें सूक्त

:-

1. डॉ० नाथूलाल पाठक, "ऐतरेय ब्राह्मण"
2. कौ० ब्रा० 11/7
3. डॉ० फतेहसिंह, "वैदिक दर्शन", पृ० 40
4. ऐ० ब्रा० 3/23
5. डॉ० फतेहसिंह "वैदिक-दर्शन", पृ० 212-217
6. छा० उ० 6/2/1
7. देवानां पूर्व्ये .... तदुत्तानपदस्परि ।।
   ऋ० वे० 10/72/2-3

से लिया गया है । छान्दोग्योपनिषत्कार ने इस सिद्धान्त को और अधिक परिष्कृत एवं परिवर्धित करके इस प्रकार व्यक्त किया है - "आदि में एक असद् की ही सत्ता थी । असद् ने अपने को सद् के स्वरूप में परिणत कर लिया । सद् ने बढ़ कर एक विशाल अण्डे का स्वरूप धारण कर लिया । एक वर्ष तक वह इसी अवस्था में पड़ा रहा । तत्पश्चात् टूटा तो उसके दो भागों में से एक सोने का था तथा दूसरा चाँदी का । चाँदी का भाग पृथ्वी बन गया और सोने का भाग आकाश । अण्डे के जरायु से पर्वत-श्रेणियाँ ; उसके उल्ब से नीहार और मेघ ; उसकी धमनियों की सरिताएँ बन गईं ; उसके अन्दर का द्रव पदार्थ समुद्र बन गया" । इस अण्डे से जिसका उद्भव हुआ वह सूर्य था । जब सूर्य का उद्भव हुआ तो अभिवादन ध्वनि हुई ।[1]

स्रष्टा द्वारा उत्पादित आदिम तत्त्व में -

तैत्तिरीयोपनिषद्[2] एवं छान्दोग्योपनिषद्[3] में स्रष्टा द्वारा उत्पादित आदिम तत्त्व तथा उसके भीतर उसके प्रवेश का सिद्धान्त मूलतः ब्राह्मण[4] ग्रन्थों से लिया गया है । डॉ० कीथ ने भी उक्त धारणा की संपुष्टि की है ।[5] ब्राह्मण ग्रन्थों का अध्ययन करने से इतना अवश्य स्पष्ट होता है कि उपनिषदों के समान वे प्रजापति अथवा स्रष्टा की सत्ता स्वीकार करते हैं परन्तु ब्राह्मणों का प्रजापति ब्रह्म नहीं है अपितु यज्ञ ही है । उपनिषदों ने जगद् स्रष्टा के रूप में ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार किया है ।

:-

1. छा० उ० 6/2/1
2. तै० उ० 2/6
3. छा० उ० 6/3/3
4. मै० सं० 2/6
5. डॉ० कीथ, "वैदिक दर्शन" , पृ० 652

निष्कर्षतः ब्राह्मण एवं संहिताओं में उपलब्ध सृष्टि-प्रक्रिया प्रक्रिया में ही उपनिषदों में प्रतिपादित सृष्टि प्रक्रिया के सूत्र विद्यमान हैं। डॉ० राधाकृष्णन् की मान्यता है कि भारतीय दर्शन की प्रत्येक धारा के बीज ऋग्वेद में अवश्य उपलब्ध होते हैं। वेद में सृष्टि से पूर्व की अवस्था से लेकर उसकी उत्पत्ति के क्रमिक विकास का विस्तृत चित्रण किया गया है जिसका स्पष्ट प्रतिबिम्ब उपनिषदों की चिन्तन धारा पर भी पड़ा है। ऋग्वेद का "नासदीय सूक्त" सृष्टि से पूर्व की अवस्था को जिस अद्भुत एवं दार्शनिक ढ़ंग से व्याख्यायित करता है उसे विश्व के दार्शनिक इतिहास में एक अभूतपूर्व व्याख्या कहा जा सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इसी बीज-भूत सिद्धान्त का नानाविध पल्लवन हुआ है। आधुनिक युग के व्याख्याता विद्वानों ने वैदिक वाङ्मय का पुनः पुनः अवगाहन करके यह निर्णीत सिद्धान्त प्रतिष्ठापित किया है कि प्राक् औपनिषद् सृष्टि प्रक्रिया ही उपनिषदों की सृष्टि-प्रक्रिया की आधार शिला है।